श्रद्धा-शतक

डॉ. भगवानदास 'निर्मोही'





श्रद्धा-शतक

डॉ० गोपालचन्द्र मिश्र जी
वेदविभागाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी
द्वारा प्रदत्त



—डा० भगवान दास 'निर्मोही'

वितरक :—निर्धन निकेतन, खड़खड़ी हरिद्वार।

प्रथम संस्करण गुरु-पूर्णिमा ६ जुलाई, १९८२ ।
प्रकाशक :—ज्योति-निकेतन, २७-प्रोफेसर्ज कालोनी, कैथल ।
मुद्रक:—श्री दुर्गा प्रिंटिंग प्रेस, १८६७, चीराखाना, दिल्ली-६ ।
प्राप्ति स्थान :– निर्धन निकेतन, हरिद्वार—दूरभाष :—४३ ।
मूल्य :—दस रुपये





प्रेरणा एवं प्राप्ति

जीवन में अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो अनन्त प्रकाश से अन्धकारमयी गहन गुफाओं, गहरी घाटियों में गिर नारकीय यातनाओं में सिसक-सिसक कर दम तोड़ देते हैं। पर माया, ममता की गुरुतम गठरी फेंक, अज्ञान के अंधियालों एवं संत्रास में से सुखद सवेरों को ढूंढने वाले कम ही होते हैं, और उनमें से कुछ इन्हें पा भी जाते हैं। शाश्वत एवं सनातन प्रकाश केवल आध्यात्मिक दीपक की लौ से प्राप्त होता है। ऋषि केशवानन्द मेरे उन्हीं श्रद्धेय साथियों में से हैं जो आध्यात्मिक उजियालों को पा ही नहीं गए बल्कि आगे भी विखेर एवं फैला रहे हैं। वे अनेक दीपों को सांसों का स्नेह और ब्रह्म की बाती दे अविराम, अजस्र प्रकाश जुटाने एवं फैलाने में समर्थ बना रहे हैं।

पापनाशिनी गंगा के पावन तट पर बसा 'निर्धन निकेतन' एक प्रकाश पुंज एवं स्तम्भ का काम कर रहा है। यह ज्योति-स्तम्भ सदैवी एवं सार्वभौम हो जाए, इसी मंगल-कामना के लिए कहिये; या निर्धन निकेतन की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में कहिये, या लक्षचण्डी महायज्ञ की पूर्णाहुति के लिए कहिये, या ऋषि जी के प्रति अन्तरंग वयस्य भाव व्यक्त करने के लिए कहिये, किसी भी भावना से कहिये इस ज्योति स्तम्भ के स्पन्दन एवं प्राण श्रद्धेय ऋषि जी के चरणों में कोई और

लौकिक भेंट चढ़ाने में असमर्थ होते हुए, नत मस्तक मैं यह 'श्रद्धा-शतक' उनके कर कमलों में सौंप रहा हूं।

ऋषि जी के विविधताओं, संघर्षों, सफलताओं से भरे जीवन को यद्यपि एक शतक में आँकना तो असम्भव है फिर भी मैं ने अपने फक्कड़पन में एक झलक मात्र प्रस्तुत करने का पंगु प्रयास किया है। सच पूछिये तो उनके अभी तक के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व को आँकने के लिए कई महाकाव्य भी पर्याप्त एवं सक्षम नहीं होंगे।

वस्तुतः इनका सहज, सरल, सादा, सौम्य, साधु, शुचि, शान्त, सुसंस्कृत, सुशील, सभ्य, सम्भ्रान्त, सत्यनिष्ठ, शक्तिसार, सद्गुण सम्पन्न स्वभाव एवं जीवन सराहणीय ही नहीं अनुकरणीय भी है। इसी का चित्रण मैं ने तुच्छ तूलिका से कवि धर्म को निभाते हुए किया है।

मुझे विश्वास है कि ईश्वरीय अनुग्रह एवं अनुकम्पा-प्रेरणा से, जग जीवन के झक्खड़ में टिमटिमाते, बुझते-से, आतुर आतंकित अध्यात्म दीप अमर स्नेह पा शाश्वत जलेंगे, प्रकाश में जीएँगे और औरों के लिए प्रकाश फैलाएँगे।

शरद पूर्णिमा, १९८१

भगवान दास 'निर्मोही'
२७-प्रोफेसर्ज कालोना,
कैथल। (हरियाणा)



शिवस्वरूप,

ब्रह्मलीन, बाल ब्रह्मचारी

गुरुवर वंशीधर जी विरकां वालों

की

पुण्य स्मृति में

श्रद्धा-शतक

दत्ता परिवार के सौजन्य से

चरणों में धर श्रद्धा शतदल,
पुलकित मन करता अभिनन्दन।
पूजन की पावन बेला में,
ऋषिवर! मेरा शत-शत वन्दन ॥१॥

पंचनदी की पावन धरती,
हुई पुनः थी पावनतम सी।
पंचभूत पावन होने को,
मिली शरण जब केशव-तन की ॥२॥

श्रावण शुक्ला, दिवस तीसरा,
औं' सन् चौबीस की शुभ्र प्रात ।
जब चैहलां वाला में स्वयं,
दुर्गा आई थी धरे गात ॥३॥

द्विज श्रेष्ठ श्री मुंशी राम-घर,
शुभ बजने लगी बधाई थी ।
मानो मानव तन धारण कर,
शक्ति स्वयं ही प्रकटाई थी ॥४॥

लगता जन्म लिया था तुमने,
गीता का प्रण करने पूरा ।
योगी राज ! या पूर्ण करने,
गत जन्मों का योग अधूरा ॥५॥

बाल ब्रह्मचारी ने लखकर,
बात कही थी भावी कल की।
यह बालक जग तारक होगा,
महिमा होगी गंगा-जल सी ॥६॥

ब्रह्म-ज्ञान औ' विद्या के हित,
ब्रह्मचारी ले गए बालक को।
कभी विगत में रामायण के,
विश्वामित्र ज्यों राम-लखन को ॥७॥

निजता औ' ममता का नाता,
घर से बालक ने था तोड़ा।
ब्रह्म-ज्ञान अर्जित करने को,
सरस्वती से नाता जोड़ा ॥८॥

मोह - नीड़ को तजकर पक्षी,
गगन बिहारी बन जाता है।
माया - ममता - गठरी तज मन,
मुक्त बिहारी बन जाता है ॥९॥

भगिनी - सुत केशव को श्रेष्ठ,
शिक्षा औ' संस्कार दिये थे।
दीर्घायु और सुखद स्वास्थ्य हित,
बहु बिध, बहु उपचार किये थे ॥१०॥

राजसुतों सा लालन-पालन,
योगीराज वह क्यों न करता !
उत्तराधिकारी भी था पर,
दो माँ मिलकर मा-मा बनता ।।११।।

सिद्ध पुरुष वह परम पुण्यमय,
दिव्य, अलौकिक, अवतारी था।
नाती के नाते मिल पाया,
गुरुवर बाल ब्रह्मचारी था ।।१२।।

रम्य वाटिका में कुटिया थी,
नित रहते अलिगण मतवाले।
सदा गाँव से बाहर रहते,
कहलाते पर 'विरकां वाले' ॥१३॥

शत-शत सूने घर आँगन में,
कुलदीपक दे दीप जलाए।
दुर्गा का वरदान अचल था,
बुझे दीप भी थे जल पाए ॥१४॥

मुस्कानें अभिराम लुटाते,
सच्चिदानन्द का सहज रूप थे।
सबको निज सन्तान समझते,
वे सब ही के हृदय-भूप थे ॥१५॥

सभी सेवकों, भक्तों पर थे,
स्नेह - भाव आसीस लुटाते।
कहते सभी पिता जी उनको,
वे भी वत्सल - भाव जताते ॥१६॥

शत - शत शाप, विघ्न - बाधाएँ,
रक्षा - सूत्र से टल जाते थे।
दर्शन मात्र, सेवा-भक्ति से,
धुल जन्मों के मल जाते थे ॥१७॥

गुरु-मामा ने अमित स्नेह वश,
बचपन में कर दिया विवाह था ।
मात - पिता बहन - भाइयों में,
भरा हुआ अद्भुत उत्साह था ॥१८॥

कमला केशव का गठबन्धन,
ज्यों गुड़िया का खेल हुआ था ।
सच पूछो तो पाणिग्रहण यह,
शत प्रतिशत अनमेल हुआ था ॥१९॥

लवपुर, लुध्याना में पाई,
संस्कृत, आँगल भाषा शिक्षा ।
हिन्दी में ऊँची उपाधि की,
सहज प्राप्त कर ली थी दीक्षा ॥२०॥

शिक्षा का क्रम पूरा करके,
सोचा जब जीवन यापन का।
उपकारी ने अपनाया तब,
धन्धा उत्तम अध्यापन का ॥२१॥

"करनी होगी यदि नौकरी,
मैं नव दुर्गा की कर लूँगा।
करनी होगी अगर चाकरी,
मैं गुरु चरणों की कर लूँगा" ॥२२॥

ऋषि कुल सम फिर ऋषि कॉलेज का,
किया सहज ही संचालन था।
औ' अध्यात्म विद्या अध्ययन,
गृहस्थ धर्म का भी पालन था ।।२३।।

लुध्याना का नगर धन्य वह,
जहाँ बहुत से वर्ष बिताए।
भोगों में भी योगी बनकर,
जग-जल से ऊपर रह पाए ।।२४।।

अतिथियों औ' मित्रों के संग,
सदा बाँट, मिल कर खाते थे।
रहे अभावों की छाया में,
फिर भी गाते, मुस्काते थे ।।२५।।

विद्यालय से बचे समय में,
भजन - बन्दगी में रत रहते ।
यज्ञ, कीर्तन, सत्संगों में,
व्यस्त, लीन थे अविरत रहते ॥२६॥

जहाँ रहे उस घर आँगन को,
जप-तप से पावन कर डाला ।
लगता था निज स्नेह-सलिल से,
मरु भी नन्दन-सा कर डाला ॥२७॥

दान, पुण्य औ' उपकारों में,
जो था पास सभी तज डाला।
आश्चर्य की बात बहुत यह,
कमला को निर्धन कर डाला ॥२८॥

आध्यात्मिक विद्या अनुशीलन,
में काट रहे घड़ियाँ सारी।
मोह, माया में लिप्त हुए न,
कैसे थे अद्भुत घरबारी ! २९॥

अनासक्त रहे कमला - संग,
थे चाहे केशव घरबारी।
राजा जनक हुए थे पहले,
अब कलियुग में ऋषि की बारी ॥३०॥

इक दिन सतलुज की लहरें लख,
बोले, "गति जीवन गहना है।
तट - आकर्षण औ' ममता तज,
जीवन धारा-सा बहना है" ॥३१॥

साथ हमें लख जग कहता था,
कृष्ण - सुदामा की जोड़ी है।
मैं तो परम अकिंचन तप बिन,
तुमने तप - पूँजी जोड़ी है ॥३२॥

जीवन की इस भाग-दौड़ में,
कहो कहीं कुछ भी सार्थक है !
बिम्बा-फल-सा यह सब फीका,
जगत सारहीन निरर्थक है ॥३३॥

अन्तिम समय समाधि का लख,
शिव और शक्ति अन्तर में धर।
बोले गुरु, "नश्वर काया से
प्राण तजूँगा गंगा-तट पर" ॥३४॥

लुध्याना से गुरु जी को द्रुत,
पंचपुरी में लेकर आए।
आँसू बहते देख हृदय से,
गंगा ने भी नीर बहाए ॥३५॥

तजे, सम्पदा, वैभव गुरु के,
केवल आशिष् का कोष लिया।
बाँट विभव जग ने आपस में,
तुम को लाञ्छन औ' दोष दिया ॥३६॥

अनुभव सदा किया जीवन में,
मतलब के रिश्ते नाते हैं !
वे प्राणों के प्यासे बनते,
जो भी अपने कहलाते हैं ! ३७॥

किसने साथ दिया है जग में,
राही तो नित चले अकेला !
मन का सूनापन कब हरता,
भीड़ भरे जग का यह मेला ! ३८॥

विरोध औ' विपदा झक्खड़ में,
तुम में देखी नहीं निराशा।
मझधारों में डूब रहों को,
तुम ने सदा दिलाई आशा ॥३९॥

रुकते होंगे नदियाँ, नाले,
सागर-धार नहीं रुकती है।
फूँकों से बुझती दीपक लौ,
दावानल पर कब बुझती है ! ४०॥

निर्धन ने निर्धन-आश्रम हित,
गुरु के अन्तिम समाधि स्थल पर ।
तपो-भूमि हित धरती ले ली,
गंगा के चिर पावन तट पर ॥४१॥

सच तो यह है आसीसों का,
वरद हाथ जब 'वह' सिर धरता ।
अमित अभावों का तम हर 'वह',
मन-चाहा भी पूरा करता ॥४२॥

माँ गंगा के पावन तट पर,
है यह निर्धन भव्य निकेतन।
परम पूज्य ऋषि रहते इसमें,
जैसे नश्वर तन में चेतन ।।४३।।

देखा गौर वर्ण काया में,
आत्मबल का गहरा सागर।
जिसने भावों की लहरों को,
तट से जाने दिया न बाहर ।।४४।।

हमने देखा संयम का बस,
तुम से आगे छोर नहीं है।
तुमने साहस दे समझाया,
किस रजनी का भोर नहीं है ! ४५।।

तुम को देव कहूँ या मानव,
स्नेह, सौम्यता का अवतार।
विनयशीलता, सहनशीलता,
की गहरी-सी शाश्वत धार ॥४६॥

प्रभु और निज चरित्र बल से,
जो कहते थे कर दिखलाया।
यदि छेड़ो तो छोड़ो तुम मत,
निज कर्मों से कर समझाया ॥४७॥

पथ के काँटे, या ठोकर भी,
आगे सदा बढ़ाते आए।
आत्मबल अन्तर - दीपक ने,
अन्धेरों में राह दिखाए ।।४८।।

तुमने सब को अपना जाना,
समझा नहीं कभी बेगाना।
अपने चाहे हुए न अपने,
तुमने फिर भी अपने जाना ।।४६।।

जैसी भी ले मनोकामना,
जो भी पास गया, समझाया।
सुख-दुख पूछा पास बिठाकर,
सहज श्रेय का पथ दर्शाया ।।५०।।

तुम गीता के स्थितप्रज्ञ हो,
जिसने जीता अभिलाषा को।
काम, क्रोध औ' लोभ, मोह की,
बदला जिसने परिभाषा को ।।५१।।

शिव का नाम सुना था किन्तु,
कालकूट पीते कब देखा !
कटु कटुता औ' कडुआहट का,
विष तुमको बस पीते देखा ।।५२।।

रहे गृहस्थी, पर ब्रह्मचारी,
'असि धारा' व्रत को धारा था।
मोह और माया, ममता के,
जीवन को समझा कारा था ॥५३॥

कैसे तुम को लौकिक मानूँ,
हर जल कब गंगा-जल होता ?
तेरा स्नेह-सलिल सब ही के,
अन्तर का है कल्मष धोता ॥५४॥

मेरे मन के चिर खँडहर पर,
तुमने दीप धरा आशा का।
भव-भटकों को तट मिल जाए,
सहज अर्थ तेरी भाषा का ॥५५॥

अन्तर में रहते रावण के,
जलने से राघव जीतेगा।
तब सुख की सीता लौटेगी,
पीड़ाओं का युग बीतेगा ॥५६॥

अहंकार - अरि को अन्तर में,
क्षण भर को भी मत आने दो।
काम-क्रोध-अहि को भी तुम मत,
डसने औ' विष फैलाने दो ॥५७॥

स्नेह-बदलियाँ बरसा तुमने,
जीवन-जलन, तपन हर डाले।
झुलसाते जग - ज्येष्ठ - आषाढ़,
सुखद शरद सावन कर डाले ॥५८॥

अभिशापों को अपने पर सह,
वरदानों को बाँटा तुमने।
जीवन के पल-क्षण अणु-अणु को,
समदर्शी बन आँका तुमने ॥५९॥

काम, क्रोध औ' मोह, लोभ को,
विवश द्वार पर रोते देखा।
दम्भ, द्वेष को अन्तर कल्मष,
गंगा - जल से धोते देखा ॥६०॥

जो भी आया लिये कामना,
लौटा अब तक नहीं निराश।
सदा अभावों को दुलराया,
दे डाला जो सब था पास ॥६१॥

तन का ताप हरे यह गंगा,
मन का ताप हरा पर तुमने।
माटी का घट भरती गंगा,
अन्तर-कलश भरा पर तुमने ॥६२॥

अपने मन का नेता मानूँ,
या फिर मित्र कहूँ या भाई।
अंधकार में उजियाला या,
शुभ्र प्रात की शुभ अरुणाई ॥६३॥

बड़े बूढ़ों का समझाना या,
पथ में प्रेरक सी तरुणाई।
मरुथल-मन का स्नेह-सलिल वर,
या अवसादों में शहनाई ॥६४॥

मैं ने जाना, मैं ने माना,
जब भी कोई फँसा मझधार।
तुमने सब को पार लगाया,
बनकर नाविक और पतवार ॥६५॥

तुम से मिल ऐसा लगता है,
लहरों को ज्यूँ मिले किनारा।
अचल उदधि या पा जाती,
भव - भावों की चंचल धारा ॥६६॥

समतल औ' सुपार ज़िन्दगी,
पागल इसको समझें पूरी।
पर यह तो गिर-गिर उठ बढ़ना,
संघर्षों के बिना अधूरी ॥६७॥

झुकते होंगे तिनके, तरुवर,
पर्वतराज नहीं झुकते हैं।
पथ-बाधाओं औ' संकट से,
राही कभी नहीं रुकते हैं ॥६८॥

बाल ब्रह्मचारी गुरुवर का,
सिर पे रक्षक, वरद हाथ है।
माँ की अचल, अतुल शक्ति नित्य,
रहती तेरे साथ - साथ हैं ॥६९॥

दीपक सा जल नित जीवन में,
तुमने जग का हरा अन्धेरा।
अवसादों का आसव पीकर,
मुस्कानों को सदा बिखेरा ॥७०॥

साथी साथ निभाता उतना,
जिसका जितना भी नाता है।
जग-पथ भीड़ लगी रहती है,
आता इधर, उधर जाता है ।।७१।।

हम गंगा के बहते दीपक,
कब डूबें औ' बह जाएँगे !
स्यात् समय के सैकत-तट पर,
चिह्न पगों के रह जाएँगे ।।७२।।

तुमने दुलराई औ' समझी,
जिसकी जो भी मजबूरी है।
तेरे जीवन - पनघट पर आ,
रहती कब प्यास अधूरी है ! ७३॥

जिसको भी तेरे अनुग्रह के,
मिल जाते सबल सहारे हैं।
डूबने वाले उस विवश को,
मिल जाते सुभग किनारे हैं ॥७४॥

विष, वारि, शाप और शस्त्र भी,
तेरा अपहित कब कर पाए !
सदा कवच बन रक्षा करते,
सत्गुरु की रहमत के साये ॥७५॥

शत जन्मों में तेरे निन्दक,
छू न सकेंगे परछाईं भी।
अन्तर में शिव, शक्ति विराजें,
अंग-संग गुरु, गंगा माई जी ॥७६॥

बहुधा देखा जग-जीवन में,
जो भोगी, वे ही रोगी हैं।
मोह-मुक्त निर्लेप 'जनक' सम,
कुछ ही बस तुम से योगी हैं ॥७७॥

कई बार द्वेषी देवों ने,
यज्ञ आदि में विघ्न बिखेरे ।
कूट जाल, अभियोगों से,
तुमको स्वर्णिम मिले सवेरे ।।७८।।

जो ममता की गहन गुफा में,
रहते बेबस बसा बसेरा ।
वह मनका तम तोम मिटालें,
दे दो ऋषिवर सुभग सवेरा ! ७९।।

कहने को तो निर्धन हो तुम,
वसु-जननी के तट पर रहते ।
जीवन - कुरुक्षेत्र के योद्धा,
केशव हो, पर अविचल रहते ।।८०।।



पथ - प्रदर्शक, अवतारी औ',
संस्कृत, संस्कृति के केन्द्र हो।
मेरे को तो ऋषिवर बस तुम,
पावन, पूजा के मन्दिर हो ॥८१॥

लक्षचण्डी यज्ञ लख लगता,
वैदिक युग लौटा हो मानो !
पूर्वज उन ऋषियों की भाँति,
ऋषि अब यह होता हो मानो ! ८२॥

सौ सहस्र इस चण्डी - यज्ञ के,
तुम हो होता औ' अधिष्ठाता।
शत-शत छात्रों औ' भक्तों के,
तुम ही हो बस भाग्य-विधाता ॥८३॥

कमला पति हो फिर भी निर्धन,
यह कैसी अद्भुत लीला है!
आज विलग लख सच पूछो तो,
मेरा तो अन्तर गीला है ॥८४॥

नाम निकेतन का निर्धन रख,
स्वयं अभावों को पाला है।
संज्ञा को सार्थक करने हित,
कमला को भी तज डाला है ॥८५॥

सच है कमला के रहने से,
नाम निकेतन सिद्ध न होगा।
शुकनासी उपदेशों का भी,
स्यात् लक्ष्य भी सिद्ध न होगा ॥८६॥

साधक और सिद्धि का मिलना,
भावुक कवि की मधुर कल्पना।
स्थितप्रज्ञ औ' गहरे सागर,
पर तुम में न तनिक जल्पना ॥८७॥

माना भगवे वस्त्र नहीं हैं,
फिर भी अनासक्त सन्यासी।
मन को जिसने मूण्ड लिया है,
जटा - जूट वैरक्त उदासी ॥८८॥

कभी मुक्ति से बन्धन में भी,
केशव सी केशव माया है।
इसी लिए कभी बास हेतु यों,
कृष्ण-जन्म घर भी भाया है ॥८९॥

शक्ति के शाश्वत अनुग्रह से,
तुम ने जग-तम तोम मिटाया।
सन्तानों बिन सूने घर के,
अन्धेरों में दीप जलाया ॥९०॥



मन का बैल पुण्य की खेती,
बरबस, अविरत चरता फिरता।
बाँधो धर्म धैर्य्य रज्जु से,
तभी सनातन सुख है मिलता ॥९१॥

कामनाएँ नित नाच नचातीं,
भोग, वासना में उलझाकर।
ये तड़पातीं और सतातीं,
दुख के शूलों को उपजाकर ॥९२॥

शेषनाग की शय्या यह जग,
केशव पालन करे अकेला।
एक जान जंजाल बहुत से,
फिर भी सहता सभी झमेला ।।६३।।

साँझ ढले दीपक बिन घर ज्यों,
राम-नाम बिन अन्तर सूना।
जैसे जल बिन सूनी मछली,
घट-घट के बिन पनघट सूना ।।६४।।

कर्ण मधुर सुनते हैं सारे,
अप्रिय सत्य कौन सुनता है ?
कटु सत्य सुन जो मुस्काए,
उसकी ईश्वर से समता है ।।६५।।



दुख का लघु उपचार जगत में,
अज्ञानी सुख सार समझता।
जैसे स्वस्थ रोग इच्छा से,
कटुतम औषधियों को चखता॥६६॥

भारत की संस्कृति, शिक्षा को,
देश विदेशों में फैलाया।
बहु विद्यालय संचालन कर,
निज कर्मों से कर दिखलाया॥६७॥

गुरु - कृपा, माँ की आसीस से,
सपने पूरे हुए सभी ही।
आगे भी हों सफल 'मित्रवर',
सपने अभी अधूरे जो भी॥६८॥

मैं ने नहीं लिखा यह कुछ भी,
स्वयं 'उसी' ने लिखवाया है।
अविरल स्नेह रहे 'निर्मोही',
मुझको यह पारस भाया है ॥९९॥

सदा स्वस्थ औ' दीर्घ जीवन,
जन-सेवा में लगा रहे नित।
सरस्वती की सेवा के हित,
तन-मन-धन हों सदा समर्पित ॥१००॥

जिन्दगी के रुदन को मधु गीत दे दो,
बे सहारों को सहारा प्रीत दे दो।
काफिले जिनके भटकते हैं तिमिर में,
निज स्नेह के अमर उनको दीप दे दो ॥१०१॥





कवि की काव्य कृतियाँ

- रोती मुस्कानें ।
- चाँद उतर धरती पर आओ ।
- निर्मोही ।
- सपने और धड़कन ।
- तेरा दर्पण मेरी आँखें ।
- त्रिवेणी से त्रिलोकी ।
- श्रद्धा-शतक ।
- व्यंग्य-तरंग (प्रेस में)
- केवल मैं हूँ (प्रेस में)